Vol.9 September 2015 No.2
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

A Monthly publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन

हम सादर हिन्दी अपनाएँ
(हिंदी दिवस पर)

–हरिकुमार साहू

ह्न्दी के द्वारा सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में पिरोया जा सकता है।
–महर्षि दयानन्द सरस्वती

: आधी आज़ादी अपनी, पूरी आज़ादी को पाएँ।
ाज कर छलना अंग्रेज़ी की, हम सादर हिन्दी अपनाएँ।।

अंग्रेज़ों को दूर भगाकर, अंग्रेज़ी से चिपक गए हम।
आधी आज़ादी पाकर, लहराएँ अंग्रेजी का परचम।।
हिन्दी को सम्मान मिले तब, हम पूरे स्वाधीन कहाएँ।
ाज कर छलना अंग्रेज़ी की, हम सादर हिन्दी अपनाएँ।।

ढ़ें, लिखें, बोलें हम हिन्दी, हिन्दी है जन-जन की भाषा।
अंग्रेजी अपनाकर अब तक, हम उपजाते रहे निराशा।।
हिन्दी के प्रति आओ, अपना हम पुनीत कर्त्तव्य निभाएँ।
ाज कर छलना अंग्रेज़ी की, हम सादर हिन्दी अपनाएँ।।

बोल-बोल कर अंग्रेज़ी, हम दुनिया भर को बता रहे हैं।
हम गुलाम हैं अंग्रेजी के, यही आज भी जता रहे हैं।।
हिन्दी को भारत की भाषा, आओ संकल्पित हो जाएँ।
ाज कर छलना अंग्रेज़ी की, हम सादर हिन्दी अपनाएँ।।

भारत तो स्वाधीन हो गया, हिन्दी अब भी पराधीन है।
अंग्रेज़ी के रहते, अपनी यह आज़ादी दीन-हीन है।।
भारत के मानस से आर्यो! अंग्रेज़ी का भूत भगाएँ।
तजकर छलना अंग्रेज़ी की, हम सादर हिन्दी अपनाएँ।।

है आधी आज़ादी अपनी, पूरी आज़ादी को पाएँ।
तजकर छलना अंग्रेज़ी की, हम सादर हिन्दी अपनाएँ।।

गोंडपारा, बिलासपुर (छत्तीसगढ़)
चलभाष-9301142737

Brahmarpan September 2015 Vol. 9 No.2
भाद्रपद-आश्विन 2072 वि.संवत्

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
email:deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com
Website : www.thearyasamaj.org
of Delhi Arya Pratinidhi Sabha

Sh. B.D. Ukhul
Secretary
Dr. B.B. Vidyalankar 47566889
President
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
V.President
Dr. Mahendra Gupta *V.President*
Ms. Deepti Malhotra
Treasurer

Editorial Board
Dr. Bharat Bhushan Vidyalankar, Editor
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Acharya Gyaneshwararya

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

Printed & Published by
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation
Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/ 2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/ 2007/22062
Price : Rs. 10.00 per copy
Annual Subscription : Rs. 100.00

CONTENTS

1. हम सादर हिन्दी अपनाएँ 2
-हरिकुमार साहू
2. संपादकीय 4
3. सांख्य दर्शन 7
-डॉ. भारत भूषण
4. हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं की दुर्दशा 9
-प्रो. चन्द्रप्रकाश आर्य
5. अधूरी लिपि रोमन से हिन्दी को क्या काम? 13
-परमानंद पांचाल
6. हिन्दी पत्रकारिता के विकास में स्वामी श्रद्धानन्द का योगदान 16
-डॉ. भवानीलाल भारतीय
7. जब जीरो दिया मेरे भारत ने... *18*
8. योग से असाध्य रोगों को मात देने की कोशिश 23
-किशोर कुमार
9. यदि जर्मनी ईसाई राष्ट्र है, तो क्यों भारत हिन्दू राष्ट्र नहीं है?25
-मारिया विर्थ
10. देश की रक्षा हेतु हम संगठित हों
-प्रो. बलराज मधोक 29
11. The World According To Gita 33
-Henry Kissinger

संपादकीय

ब्रह्मार्पण पत्रिका का शुभारंभ हुए आठ वर्ष हो गए हैं। इसका प्रथम अंक 1 जुलाई 2007 को प्रकाशित हुआ था। परन्तु इसका औपचारिक लोकार्पण श्रावणी के शुभ अवसर पर प्रसिद्ध वैदिक विद्वान श्रद्धेय आचार्य आर्य नरेश जी द्वारा आर्यसमाज सी ब्लॉक, जनकपुरी में किया गया था। अब पुनः श्रावण मास में इस अंक को ब्रह्मार्पण के पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें हर्ष का अनुभव हो रहा है। इस पत्रिका के माध्यम से हम 'ब्रह्म' अर्थात् वेद का संदेश मानव मात्र तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं तथा दिशा-हीन भारतीय समाज को सही दिशा का ज्ञान कराना चाहते हैं। स्वाधीनता के 68 साल बीत जाने पर भी हम यह अनुभव करते हैं कि आज़ादी से पहले हमने आज़ाद भारत के लिए कुछ स्वप्न सँजोए थे, हमने देश के लिए उज्ज्वल भविष्य की कामना की थी। परन्तु हमारे वे स्वप्न कहीं खो गए। अतः अब हमें भविष्य अंधकारमय दिखाई देता है। इसका मुख्य कारण यह है कि हमने स्वाधीनता के नव-प्रभात का लाभ नहीं उठाया। हमने अपनी नई पीढ़ी के युवा-वर्ग को अनुशासन, नैतिकता, सच्चरित्रता का पाठ नहीं पढ़ाया इसलिए उन्होंने स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता समझ लिया। उन्हें अपने गन्तव्य, अपनी मंजिल का बोध ही नहीं रहा। "ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन" एक नई पहल कर रहा है। यह भारतीय जनमानस को अपने सुरम्य अतीत से परिचित कराकर उसके समक्ष समुज्ज्वल भविष्य का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास कर रहा है। इस दिशा में प्रयास आरंभ भी कर दिए हैं। 'ब्रह्मार्पण' पत्रिका के सचिव श्री ब्रह्मदत्त उक्खल ने दिल्ली विश्व विद्यालय के प्रो. डी. एन झा द्वारा लिखित एवं वर्सोप्रेस, लंदन-न्यूयार्क द्वारा प्रकाशित "The Myth of the Holy Cow" का प्रमाणों के साथ खंडन करते हुए "No Beef in Vedas" नामक पुस्तक प्रकाशित की। इसकी एक एक प्रति सभी सांसदों को भेजी गई।

हमारे पास वेद, उपनिषद्, मनुस्मृति, गीता आदि प्राचीन वैदिक साहित्य की विशाल धरोहर है; रामायण, महाभारत जैसे ऐतिहासिक ग्रंथ हैं। हम इन्हें जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं। ताकि वे अपने धर्मग्रन्थों, प्राचीन भारतीय संस्कृति, संस्कृतभाषा और साहित्य संपदा से परिचित हो सकें।

वेद धर्म का मूल है। इसमें सत्य ज्ञान का भंडार है। चार वेद ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान के स्रोत हैं। हम इनके रहस्य को समझें और अपने जीवन में उतारें। ज्ञानपूर्वक शुभकर्म करके हम अपने जीवन को उन्नत करें और संसार को सुखी बनाते हुए कामना करें-

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तुनिरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्।।

अर्थात् संसार में सभी प्राणी, सभी मनुष्य रोग से मुक्त और सुखी हों, सर्वत्र अनन्त सुख-समृद्धि हो, कोई भी व्यक्ति कभी दुःखी न हो। यही हमारी संस्कृति का मूलमंत्र है। भारतीय संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान और चिन्तन का आधार संस्कृत भाषा है। हमें अपनी इस पूंजी को सुरक्षित रखना है। संस्कृत के बिना हमारी संस्कृति, हमारी अस्मिता और ज्ञान-विज्ञान सब खतरे में हैं। इस विषय में हमारी सरकार दिशाहीन है। पिछली सरकार ने सभी स्तरों पर संस्कृत भाषा के अध्ययन-अध्यापन को समाप्त कर दिया था। हमें आशा है कि वर्तमान सरकार संस्कृत के संवर्धन के लिए प्रयास करेगी।

हमारा यह भी प्रयास होगा कि भारतीय इतिहास और वैदिक साहित्य में पाश्चात्य विद्वानों और पथभ्रष्ट भारतीय इतिहासकारों ने जो विकृतियाँ पैदा कर दी हैं उन्हें उजागर कर अपने इतिहास के वास्तविक स्वरूप से लोगों को परिचित कराएँ। हमारे शास्त्रों में उच्च विचार, सात्विक चिन्तन और शाकाहार के महत्व को प्रतिपादित किया है, परन्तु पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव से मांसभक्षण, मदिरापान और उन्मुक्त यौनाचार का ऐसा प्रचलन बढ़ गया है कि इससे भारतीय जन-जीवन बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। धार्मिक आचार-व्यवहार के अभाव में देश का युवावर्ग कामुकता और अनाचार के गर्त में गिर रहा है। 'इसके सुधार के लिए सामाजिक संगठनों के योगदान की भूमिका महत्वपूर्ण है।

भारत में गाय को माता के समान पवित्र माना गया है। उसका पवित्र दूध शरीर और मस्तिष्क के स्वास्थ्य के लिए माता के दूध के समान उत्तम है। इसलिए गोवंश की रक्षा और संवर्धन के लिए व्यापक प्रयास की आवश्यकता है। गोवंश भारत की कृषि पर आधारित अर्थ-व्यवस्था का आधार है। ब्रिटिश सम्राज्ञी विक्टोरिया के राज्याभिषेक से पूर्व स्वामी दयानन्द ने इस दिशा में गंभीर प्रयास किए थे जब उन्होंने गोवध बंद कराने के लिए दो करोड़ लोगों के हस्ताक्षर

कराकर एक प्रतिवेदन महारानी को प्रस्तुत किया था।

हमारे देश में जन्म पर आधारित जातिप्रथा एक अभिशाप बन गई है जो देश की प्रगति में बाधक है। भारतीय समाज का ही नहीं विश्व के सभी देशों के समाज का विभाजन चार वर्गों में पाया जाता है। समाज में देश को परामर्श देने के लिए बुद्धिजीवी वर्ग (ब्राह्मण); देश की आन्तरिक और बाहरी सुरक्षा के लिए पुलिस और सैनिक वर्ग (क्षत्रिय), जनता के भरण-पोषण के लिए उद्योग-व्यापार और कृषक वर्ग (वैश्य) तथा चौथा वर्ग उन लोगों का है जो शिक्षित और कुशलकर्मी नहीं हैं और श्रम द्वारा आजीविका कमाते हैं। इन्हीं को मनु ने क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कहा है। यह विभाजन कार्य पर आधारित है। इसमें किसी प्रकार के छोटे-बड़े या ऊँच-नीच की भावना नहीं है। यह कार्य पर आधारित विभाजन बाद में जन्म के साथ जुड़ गया। इसे संतुलित करने की आवश्यकता है। जो आर्थिक रूप से पिछड़ गए हैं उन्हें अन्य वर्गों के समान स्तर पर लाने के लिए आर्थिक सहायता और शिक्षा की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए। सामान्यतः यह अनुभव किया जाता है कि राजनीतिक दल अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए पिछड़े वर्गों का वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल करते हैं और देश को बाँटने का काम करते हैं। हमें हिन्दू समाज को एकजुट करने का प्रयास करना चाहिए।

आज हमारे समाज में अंध-विश्वासों, चमत्कारों, कुरीतियों और गुरुडम का बोलबाला है। संचार माध्यमों का काम लोगों को शिक्षित करके इन्हें दूर करने का होना चाहिए। परन्तु वे इन्हें और बढ़ाने में लगे हैं। सभी चैनल ज्योतिषियों के भविष्य बताने वाले कार्यक्रम प्रसारित करते हैं। इन्हें देखकर अनपढ़ और अपरिपक्व बुद्धि वाले पढ़े-लिखे लोग सहज ही इनके शिकार बन जाते हैं। इन प्रवृत्तियों पर कठोर आघात करने की आवश्यकता है। ये हिन्दुओं को अंदर से कमजोर कर रहे हैं। इसके प्रति सावधान रहना आवश्यक है।

अन्त में पाठकों से निवेदन है कि ये पत्रिका में सुधार के लिए अपने अमूल्य सुझाव और प्रतिक्रिया अवश्य लिखें ताकि हम भविष्य में इसे और सुचारू रूप में प्रस्तुत कर सकें।

इस अंक से हम ऐसे प्राचीन आचार्यों से आपका परिचय करा रहे हैं जिन्होंने विज्ञान, गणित, आयुर्वेद, दर्शन आदि विषयों में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

संपादक

सांख्य दर्शन (अध्याय-1, सूत्र-92)

-डॉ. भारत भूषण विद्‌यालंकार

इससे पूर्व सूत्र में बताया गया था कि प्रकृति सत्व, रजस् और तमस् रूप है। उसके साधर्म्य का उल्लेख कर सूत्रकार निम्नलिखित सूत्र में सत्व, रजस् और तमस् के स्वरूप के बारे में विचार करते हैं, सूत्र है-

प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योन्यं वैधर्म्यम्।।92।।

अर्थ-(गुणानां) गुणों का (प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैः) प्रीति, अप्रीति, विषाद आदि द्वारा (अन्योन्यं) परस्पर (वैधर्म्यं) वैधर्म्य है।

भावार्थ-सत्व, रज और तम ये तीनों गुण क्रमशः प्रीति, अप्रीति और विषादस्वरूप हैं। सूत्र का 'आदि' पद सत्व आदि के प्रीति आदि गुणों का मुख्यतः संकेत करता है। अर्थात् सत्व-प्रीति, रज-अप्रीति और तम विषादस्वरूप हैं। प्रीति आदि की मुख्यता बताने से सत्व आदि की अन्य विशेषताओं का प्रतिपादन हो जाता है। सत्व की अन्य विशेषताएँ हैं-प्रसाद, लाघव, अनभिरति, तितिक्षा, संतोष, सुख आदि; रजस् की विशेषताएँ हैं- शोक, तृष्णा, ईर्ष्या, दुःख आदि और तमस् की निद्रा, प्रमाद, मोह आदि। सत्व का स्वरूप प्रीति है जो रज और तम का नहीं है। अप्रीति (विराग) रज का स्वरूप है जो सत्व, तम का नहीं है, इसी प्रकार विषाद तम का स्वरूप है परन्तु सत्व, रज का नहीं। इसलिए प्रीति आदि को सत्व आदि में से परस्पर एक-दूसरे का वैधर्म्य कहा गया है।

जगत् के उपादान तत्व का स्वरूप प्रीति आदि पदों से किस प्रकार प्रकट होता है, यह जानने की बात है। इन पदों के साधारण अर्थ की उपयोगिता केवल उस समय सामने आती है जब हम मानव-अमानव प्राणी समाज का सत्व आदि गुणों के आधार पर विश्लेषण करते हैं। उन विशेषताओं के संबंध में भी यही स्थिति समझनी चाहिए जिनका 'आद्य' पद से कथन किया गया है। परंतु सत्व आदि तत्वों का मूल स्वरूप कैसे दिखाई देता है, यह विचारणीय है। यदि हम प्रीति आदि पदों के साधारण अर्थ का सीधा संबंध सत्व आदि से न जोड़कर यह सोचें कि मूल तत्व की वास्तविकता को प्रकट करने के लिए प्रीति आदि पदों का प्रयोग एक विशेष भावना के आधार पर किया गया है तो शायद हमें उसके स्वरूप को समझने में सुविधा होगी। यह भावना क्या है? इसे समझने के लिए आधुनिक भौतिक विज्ञान द्वारा प्रदर्शित मूल तत्वों के

विश्लेषण की ओर ध्यान देना होगा। जगत् के मूल तत्व अणु-प्रोटोन, इलेक्ट्रोन और न्यूट्रोन हैं। जो एक प्रकार के विद्युत कण या विद्युत तरंग के रूप में समझे जाते हैं। अणु की रचना बहुत रहस्यपूर्ण है। यह स्वयं में एक संसार है। इसमें प्रोटोन के चारों ओर इलेक्ट्रोन तीव्र गति से घूमते रहते हैं। प्रोटोन अपनी ओर दूसरे तत्वों को आकर्षित करता है। दूसरा अलग भागना चाहता है। पर पहले का आकर्षण इसे दूर भागने नहीं देता। इसका परिणाम यह होता है कि दूसरा (इलेक्ट्रोन) पहले (प्रोटोन) के चारों ओर तीव्र गति से चक्कर काटता रहता है। इन दोनों के इस चुम्बकीय आकर्षण-अनुकर्षण का आधार तीसरा तत्व रहता है। वह वहाँ निष्क्रिय सा पड़ा रहता है जिसके सहारे पूर्वोक्त दोनों अपनी क्रीड़ा में रत रहते हैं। यद्यपि सत्व आदि के साथ इनकी तुलना कदाचित् पूर्ण एवं व्यवस्थित नहीं कही जा सकती, निश्चय ही सत्व आदि की स्थिति और भी मूल की ओर है तथा वर्तमान विज्ञान के आधार पर विश्लेषित 'अणु' सांख्य के 'तन्मात्र' तत्व के परिणाम रूप सूक्ष्म तत्व कणों के स्थान पर हों, ऐसा संभव है, फिर भी सत्व आदि के साथ पूर्वोक्त विश्लेषण की तुलना, कपिल की अन्तर्भावना को समझने में सहायक हो सकती है। यदि हम प्रोटोन को सत्व, इलेक्ट्रोन को रजस् और न्यूट्रोन को तमस् के समकक्ष रखते हैं तो सत्व आदि के प्रीति आदि स्वरूप का स्पष्टीकरण हमारे सम्मुख हो जाता है। सत्व रजस् को अपनी ओर आकृष्ट करता है- यही सत्व का प्रीतिस्वरूप है तथा रजस् सत्व से दूर भागना चाहता है यही रजस् का अप्रीति स्वरूप है। सत्व अपने प्रीतिस्वरूप आकर्षण से उसे दूर नहीं हटने देता, फलतः रजस् तीव्र गति से उसके चारों ओर चक्कर लगाता रहता है। फिर भी वह अपने आपको उसमें समाविष्ट नहीं होने देता, वह उसके साथ, पर पृथक् रूप में अवस्थित रहता है। इस प्रकार उसका अप्रीति स्वरूप बराबर बना रहता है। सांख्य में रजस् को इसी कारण चल स्वभाव कहा गया है। तमस् उसके आधार रूप में वहाँ निष्क्रिय-सा पड़ा रहता है। यही उसका विषाद स्वरूप है। इसे पहले दोनों का भारवाही समझना चाहिए। इस प्रकार कपिल ने 'प्रीति' आदि पदों के द्वारा सत्व आदि मूल तत्वों के स्वरूप का जो संकेत किया है उसमें एक गंभीर भावना निहित है जो मूल तत्वों की वास्तविक स्थिति पर प्रकाश डालती है।

सी-2ए, 16/90 जनकपुरी,
नई दिल्ली-10058

हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं की दुर्दशा

-प्रो. चन्द्रप्रकाश आर्य

हिन्दी भारत की राजभाषा तथा राष्ट्रभाषा है। संविधान में इसे राजभाषा का स्थान प्राप्त हुए 65 वर्ष हो गए हैं। संसार में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं की दृष्टि में चीनी भाषा और अंग्रेजी के बाद इसे तीसरा स्थान प्राप्त है। 'विश्व के भाषाई मानचित्र' (न्यूयार्क) के अनुसार हिन्दी विश्व की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। नेपाल में भी हिन्दी बोली जाती है। हिन्दी के माध्यम से इस्लामाबाद, काबुल तथा ढाका में भी बातचीत की जा सकती है। मॉरिशस, सूरीनाम, फिजी तथा ट्रिनिदाद में भी हिन्दी का व्यवहार होता है, यहाँ तक कि वहाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन भी हो चुके हैं, किन्तु हम अपने ही देश में हिन्दी को उचित स्थान नहीं दे पाए हैं। स्वाधीनता के 68 वर्ष बाद भी हम इसे राजभाषा नहीं बना पाए हैं। सरकारी कामकाज से लेकर प्रशासन तथा निजी क्षेत्रों में सभी जगह अंग्रेजी का ही वर्चस्व है। शिक्षा, उच्चतर शिक्षा, नव्य ज्ञान विज्ञान, तकनीकी, प्रौद्योगिकी तथा प्रबन्धन आदि क्षेत्रों में अंग्रेजी का वर्चस्व है।

यद्यपि देश की समस्त सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक गतिविधियाँ हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं में संचालित होती हैं, देश की जनता से सम्पर्क भारतीय भाषाओं में होता है, अंग्रेजी देश के किसी भी प्रदेश, जिले अथवा ग्राम की भाषा नहीं है, फिर भी यह देश पर हावी है। प्रतिवर्ष देश में विभिन्न संस्थाओं द्वारा हिन्दी के उपलक्ष्य में आयोजन किए जाते हैं, क्योंकि सरकारी कामकाज में, सार्वजनिक प्रतिष्ठानों/निगमों/उमक्रमों एवं कार्यालयों में अब भी अंग्रेजी का प्रयोग जारी है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग/इलाहाबाद के पिछले 17-18 वर्ष के कार्यक्रमों पर नजर डालें तो स्थिति स्पष्ट हो जाएगी। 13-14 सितम्बर 68 को लुधियाना (पंजाब) में आयोजित अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा सम्मेलन में हिन्दी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की माँग की गई। इसी प्रकार सम्मेलन द्वारा 1971-80, 1999-2000 में आयोजित

विभिन्न कार्यक्रमों में मुख्य मुद्दा यही था कि हिन्दी कहाँ से कहाँ पहुँची। इसी प्रकार 2-3 जून 2001 को देहरादून में सम्पन्न हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के वार्षिक अधिवेशन का मुख्य विषय था-**20वीं सदी की चुनौतियाँ-राष्ट्रभाषा हिन्दी के संदर्भ में**। इसी प्रकार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग/इलाहाबाद द्वारा स्टेल्ला मॉरिस कॉलेज, हिन्दी विभाग, चेन्नै तथा तमिलनाडु बहुभाषी लेखिका संघ, चेन्नै के, संयुक्त तत्त्वाधान में आयोजित संगोष्ठी में मुख्य विषय यह था कि राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं में लोगों की अटूट आस्था कैसे पैदा की जाए?

आखिर ऐसा क्यों? इसका कारण है देश में अंग्रेजी का वर्चस्व। सरकार, प्रशासन, राजकाज, विज्ञान, चिकित्सा, प्रबन्धन, प्रौद्योगिकी, विधि एवं न्याय आदि महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में अब भी अंग्रेजी का वर्चस्व जारी है। अंग्रेजी दिनों-दिन समाज और शासन की केन्द्र बिन्दु बनती जा रही है। हिन्दी और भारतीय भाषाओं की घोर उपेक्षा हो रही है जबकि इनके जानने वाले पूरे देश के लोग हैं। हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों की प्रसार संख्या भी अंग्रेजी के पत्रों से अधिक है। टी. वी. चैनलों पर हिन्दी का प्रसारण भी अंग्रेजी से अधिक होता है, फिर भी सरकारी विज्ञापनों का 60-70 प्रतिशत भाग अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं को दिया जाता है। सातवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन सूरीनाम (लेटिन अमेरिका) में 5 जून 2003 को हुआ। भारत सरकार कीओर से इसमें भाग लेने के लिए 50 सदस्यों का एक प्रतिनिधि मण्डल सूरीनाम गया। इसके अलावा संसद का एक प्रतिनिधि मण्डल और राज्य सरकारों का एक प्रतिनिधि मण्डल भी सूरीनाम गया। कुल मिलाकर सरकारी तौर पर इस समारोह में 250 लोगों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में दुनिया के देशों में हिन्दी की स्थिति, हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की हालत, इण्टरनेट, कम्प्यूटर और हिन्दी, नई तकनीक और हिन्दी, अर्थव्यवस्था में हिन्दी की भूमिका आदि विषयों पर परिचर्चा हुई। यह अच्छी बात है, स्वागत योग्य कदम है। किन्तु अपने ही देश में हम हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं को

उचित स्थान देने को तैयार नहीं। इस संदर्भ में 31 मई तथा 1 जून 2003 को वैदिक मोहन आश्रम, भूपतवाला (हरिद्वार) में अपनी भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा के लिए सामूहिक अभियान/आन्दोलन हेतु अखिल भारतीय विचार-विमर्श बैठक हुई। इसमें हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं से जुड़े पैंतीस संगठनों ने भाग लिया। महासचिव **राजभाषा संघर्ष समिति** (ए-4/153, सै.-4 रोहिणी, दिल्ली-85) के अनुसार आयोजित समिति द्वारा इसमें मुख्यतः निम्न विषयों पर विचार किया गया।

1. जिला, सत्र, उच्च तथा सर्वोच्च न्यायालयों में राजभाषा हिन्दी प्रादेशिक भाषाओं की प्रतिष्ठा तथा प्रयोग के उपाय।
2. केन्द्र और राज्य सरकारों के कामकाज में हिन्दी/प्रादेशिक भाषाओं के प्रयोग को बढ़ावा।
3. शिक्षा एवं प्रशिक्षण के क्षेत्रों में माध्यम भाषाओं के रूप में हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओं की वर्तमान स्थिति।
4. केन्द्र तथा राज्य सरकारों की भर्ती परीक्षाओं में अंग्रेजी की अनिवार्यता को समाप्त करवाना।
5. दूरदर्शन और आकाशवाणी की भाषा नीति में सुधार।
6. हिन्दी/प्रादेशिक भाषाओंके प्रचार, परस्पर अनुवाद तथा कम्प्यूटर में इनका अधिकाधिक प्रयोग।
7. त्रिभाषा सूत्र का पुनः अवलोकन।
8. वाहनों पर नम्बर प्लेट की वर्तमान सरकारी नीति में सुधार।

आज कम्प्यूटर और इंटरनेट की हमारी अपनी कोई भाषा नहीं है। एक रिपोर्ट के अनुसार इंटरनेट के लगभग 100 करोड़ पृष्ठों में, हिन्दी के 1000 पृष्ठ भी नहीं है। चीन ने अपनी भाषाओं के लिए 'इंटरनेशनल कम्युनिकेशन' नामक कम्पनी के सहयोग से चाइना इंटरनेट तैयार कर लिया है, किन्तु हमने हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं को कम्प्यूटर तथा इंटरनेट पर आगे लाने के लिए बहुत कम प्रयास किया है।

हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं को इस दयनीय स्थिति में पहुँचाने के लिए देश के शासक, राजनेता तथा राजनीतिक पार्टियाँ जिम्मेदार हैं।

यद्यपि स्वाधीनता की लड़ाई हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं के माध्यम से लड़ी गई थी किन्तु आजादी के बाद इनकी महत्ता गौण होती चली गई। आज स्थिति यह है कि किसी भी राजनीतिक दल या नेता में राष्ट्रभाषा/राजभाषा को उचित स्थान दिलाने की इच्छाशक्ति नहीं है।

अंग्रेजी के वर्चस्व के कारण देश में भयानक शैक्षिक, सामाजिक एवं आर्थिक विषमता आई है। चिकित्सा, विज्ञान, इंजीनियरिंग, सूचना तकनीकि आदि की उच्चतर शिक्षा में अंग्रेजी का प्रभुत्व बढ़ता जा रहा है। कॉर्पोरेट तथा प्रबंधन के क्षेत्र में अंग्रेजी हावी है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों में अंग्रेजी हावी है। अखिल भारतीय भर्ती सेवाओं में-चाहे वे केन्द्र अथवा राज्य सरकारों की हों-अंग्रेजी जानने वालों का ही एकाधिकार रहता है। इस प्रकार हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं को जानने वाले देश के 69 से 98 प्रतिशत लोगों की इनमें कोई भागीदारी नहीं है। सभी राजनीतिक पार्टियों एवं शासकों को इस सामाजिक एवं आर्थिक तथा शैक्षिक विषमता एवं अन्याय को दूर करने के बारे में विचार करना चाहिए। अंग्रेजी के वर्चस्व के कारण फैली इस असमानता को दूर करने की अपेक्षा वे अंग्रेजी का वर्चस्व/शिकंजा और मजबूत करते जा रहे हैं। दिल्ली, पश्चिम बंगाल, बिहार, पंजाब, हरियाणा, तमिलनाडु, गुजरात, महाराष्ट्र आदि राज्यों द्वारा प्राथमिक कक्षाओं से अंग्रेजी को अनिवार्य करना इस बात का प्रमाण है। इससे समस्या का समाधान नहीं होगा। असमानता की खाई बढ़ती जायेगी।

अतः देश में अंग्रेजी का वर्चस्व समाप्त करने के लिए, हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं को उचित स्थान दिलाने के लिए भारत सरकार तथा प्रधानमंत्री जी को पहल करनी चाहिए। सभी राजनीतिक पार्टियों/दलों को, अपने स्वार्थों एवं दुराग्रहों को त्याग कर देशहित में इस बारे में सहयोग करना चाहिए।

432/8, अर्बन एस्टेट,
करनाल-132001

अधूरी लिपि रोमन से हिन्दी को क्या काम?

-परमानंद पांचाल

आज कुछ लोग ग्लोबलाइजेशन के लिए देवनागरी के बदले हिंदी के लिए रोमन लिपि की वकालत करने लगे हैं, वे कहते हैं "रोमन लिपि अपनाओ, हिन्दी बचाओ" इसे पढ़कर आश्चर्य हुआ। एक ओर दुनिया के जाने माने भाषाविज्ञानी देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता और श्रेष्ठता की दुहाई दे रहे हैं, इसे कंप्यूटर के लिए सबसे उपयुक्त लिपि बता रहे हैं, दूसरी ओर कुछ लोग इसे छोड़कर रोमन जैसी अवैज्ञानिक लिपि अपनाने की सलाह दे रहे हैं। उनके विचार से यदि हिन्दी ने रोमन लिपि नहीं अपनाई तो यह मर जाएगी। डॉ. चेतन भगत जैसे कुछ रोमन लिपि के समर्थक यह भूल जाते हैं कि हिंदी ने पिछले एक हजार वर्षों में न जाने कितने उतार-चढ़ाव देखे, फिर भी वह बची रही, क्योंकि वह जनभाषा है। एक जनभाषा को कोई मार नहीं सकता।

क्या कहती है फोनोलॉजी (स्वर विज्ञान)

इतिहास के हर मोड़ पर हिंदी के जीवित रहने और लोकप्रिय बने रहने का कारण इसका लचीलापन और उसकी वैज्ञानिक लिपि देवनागरी ही है। हिंदी की ताकत पर भरोसा न कर पाने वाले यह भूल जाते हैं कि देवनागरी विश्व की सबसे वैज्ञानिक लिपि है। इसकी प्रशंसा आधुनिक काल के अनेक पश्चिमी विद्वानों ने की है। स्वर विज्ञान (फोनोलॉजी) के अनुसंधानकर्ता आइजक पिटमैन का कहना हे कि संसार में यदि पूर्ण अक्षर हैं तो वे देवनागरी के ही हें। प्रो. मोनियर विलियम्स ने कहा था, 'देवनागरी अक्षरों से बढ़कर पूर्ण और उत्तम अक्षर दूसरे नहीं हैं'। जॉन क्राइस्ट तो यहाँ तक कहते हैं कि मानव मस्तिष्क से निकली हुई नागरी की वर्णमाला ही पूर्ण है।

रोमन लिपि के सबसे बड़े समर्थक सर विलियम जॉन्स को भी कहना पड़ा था कि हमारी भाषा अंग्रेजी की वर्णमाला तथा

वर्तनी अवैज्ञानिक तथा किसी हद तक हास्यापद भी है। जॉर्ज बर्नार्ड शॉ जैसे अंग्रेजी के शीर्ष साहित्यकार भी रोमन लिपि से खिन्न थे। सभी जानते हैं कि रोमन लिपि में उच्चारण की दृष्टि से एकरूपता लाना कठिन है। स्वयं अंग्रेजी और फेंच भाषाएँ इसका जीवंत उदाहरण हैं। रोमन के कारण अंग्रेजी शब्दों के उच्चारण में अराजकता है। कहने को रोमन लिपि में 26 अक्षर हैं, किन्तु उनके छपाई-लिखाई तथा कैपिटल-स्मॉल अक्षर अलग-अलग होने से 26 गुणे 4 अर्थात् 104 प्रकार के अक्षर सीखने होते हैं। क्या यह कम पेचीदा काम है?

पिछले दिनों 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में एक समाचार प्रकाशित हुआ था कि ब्रिटिश लाइब्रेरी की रिसर्च इंस्टीट्यूट लोगों से कुछ अंग्रेजी शब्दों के सही उच्चारण आमंत्रित कर रहा है, क्योंकि लोग एक ही शब्द का उच्चारण अलग-अलग प्रकार से कर रहे हैं। ऐसे कुछ शब्द थे- टमाटर, गैराज, मिराज आदि। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 में देवनागरी को भारत की राजभाषा हिंदी की आधिकारिक लिपि स्वीकार किया गया है। देवनागरी मात्र हिंदी की नहीं, संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल संस्कृत, मराठी, डोगरी, बोडो, नेपाली, मैथिली आदि की भी आधिकारिक लिपि है।

हमारे संविधान निर्माताओं ने पर्याप्त विचार-मंथन के बाद ही इसे अपनाने का निर्णय लिया था। यह अलग बात है कि उनके उत्तराधिकारियों ने उनकी भावना को नहीं समझा। समय-समय पर गठित शिक्षा आयोग कहते रहे कि शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाओं को बनाया जाए और बच्चे की प्राथमिक शिक्षा उसकी मातृभाषा में ही दी जाए। मगर गुलामी की मानसिकता में पले और दीक्षित हुए सरकारी तंत्र ने इसे नहीं माना। समाज में अपना वर्चस्व बनाए रखने की मानसिकता ने ब्रिटिश राज की दोहरी शिक्षा प्रणाली को ही जारी रखा। इस तरह अंग्रेजी माध्यम के प्राइवेट स्कूलों की बाढ़ सी आ

गई और अंग्रेजी माध्यम के निजी स्कूलों में अपने बच्चों को पढ़ाना प्रतिष्ठा का विषय बन गया।

आज विश्व में हिंदी का प्रचलन बढ़ रहा है और इसे संसार की दूसरी सबसे बड़ी भाषा माना जाता है। यह अर्थव्यवस्था से लेकर तकनीकी तक, हर क्षेत्र की भाषा बन रही है। विज्ञापन जगत ने हिंदी को स्वीकार कर लिया है। अब उसमें अंग्रेजी के कई शब्द आने लगे हैं, पर नागरी में ही। जैसे एक विज्ञापन है- ये दिल माँगे मोर'। यहाँ 'मोर' नागरी में ही लिखा जाता है, रोमन में नहीं। आज यूरोप और अमेरिका में कंप्यूटर सॉफ्टवेयर के विकास में जो शोधकार्य हो रहा है, उसने भी नागरी लिपि की वैज्ञानिकता के प्रति विशेषज्ञों का ध्यान आकृष्ट किया है। भारत में भी आज सूचना प्रौद्योगिकी के लिए प्रयुक्त होने वाले लगभग हर कम्प्यूटर, टैब, मोबाइल सहित विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में देवनागरी का प्रयोग संभव है। यूनिकोड ने देवनागरी को दुनिया के हर कोने में उपयोगी बना दिया है।

बाजार का दवाब

दरअसल इस विवाद के पीछे मुख्य भूमिका विदेशी कंपनियों के बढ़ते दबदबे की है। वे अपने माल की बिक्री के लिए हिंदी के बाजार पर नियंत्रण करना चाहती हैं। करोड़ों लोगों क़ी भाषा हिंदी को तो बदला नहीं जा सकता, इसलिए उ़सकी लिपि को बदलने के लिए वे मीडिया के माध्यम से दबाव डालना चाहती हैं। **सवाल यह उठता है कि यदि हिंदी को रोमन में लिखा जाए, तो क्या वह हिंदी रह जाएगी? जहाँ ट, और त और 'टी' के और द, ड, ड़ तीनों 'डी' के पेट में जा चुके हों, वह भाषा तो 'हिंग्लिश' कहलाने लायक भी नहीं बचेगी।** ऐसे में देवनागरी छोड़ रोमन जैसी अपूर्ण लिपि को हम भला क्यों अपनाएँ?

हिन्दी पत्रकारिता के विकास में स्वामी श्रद्धानन्द का योगदान

-डॉ. भवानीलाल भारतीय

आर्य समाज के महान नेता स्वामी श्रद्धानंद का व्यक्तित्व बहुआयामी था। उन्होंने देश, धर्म, समाज तथा शिक्षा के क्षेत्रों में जो बहुमूल्य योगदान किया वह तो इतिहास की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है ही, हिन्दी पत्रकारिता के विकास में भी उनकी निर्णायक भूमिका रही है। उन्होंने कार्यक्षेत्र में उस समय प्रवेश किया जब हिन्दी पत्रकारिता अपनी शैशवावस्था में थी। अपनी दूरदर्शिता तथा सहज बुद्धि से स्वामी जी ने अनुभव किया कि आर्य सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के लिए भारतीय भाषाओं के पत्रों की उपयोगिता निर्विवाद है। इसी विचार को दृष्टिगत रखकर स्वामी श्रद्धानन्द ने सर्वप्रथम सद्धर्म प्रचारक पत्र उर्दू में निकाला किन्तु जब उन्होंने यह अनुभव किया कि हिन्दी की व्यापकता तथा उसकी सर्वस्वीकार्यता को देखते हुए इस पत्र को हिन्दी में निकालना ही उचित है तो उन्होंने इस परिवर्तन में देर नहीं की। बाद में भी गुरुकुल कांगड़ी के द्वारा अनेक पत्र निकाले गये जिनके द्वारा भारतीय संस्कृति के प्रसार में सहायता मिली। स्वामी श्रद्धानन्द के सुपुत्र पंडित इन्द्र विद्यावाचस्पति तो हिन्दी पत्रकारिता के शिखर पुरुष थे। उन्होंने पत्रकारिता का पहला पाठ अपने स्वनाम धन्य पिता के चरणों में बैठकर ही सीखा था। अतः इन्द्र जी द्वारा हिंदी पत्रकारिता की जो सेवा की गयी उसमें भी स्वामी जी के योगदान को देखा जा सकता है।

यह प्रसन्नता की बात है कि युवा विद्वान् डॉ. सुभाषचन्द्र भाटी ने युग पुरुष श्रद्धानन्द के पत्रकार जीवन की सुन्दर तथा संश्लिष्ट विवेचना उपर्युक्त शोध ग्रंथ में की है जिस पर उन्हें गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय ने पी.एच.डी. की उपाधि प्रदान की है। डॉ. भाटी का जन्म पन्द्रह मई सन् उन्नीस सौ इकहत्तर को मुजफ्फरनगर जिले के ग्राम टिटोड़ा में श्री हातम सिंह के यहाँ हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् उन्होंने दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार में अध्ययन कर

विद्या वाचस्पति की उपाधि प्राप्त की। तदनन्तर वे गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर तथा गुरुकुल कांगड़ी में अध्ययनरत रहे तथा हिन्दी एम.ए. तथा पी.एच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त कीं। आलोच्य शोध प्रबन्ध में विद्वान् शोध लेखक ने ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में स्वामी श्रद्धानन्द के पुत्र तथा प्रवृत्तियों की सतर्क समीक्षा करने के पश्चात् स्वामी जी द्वारा सम्पादित पत्रों का विस्तृत परिचय दिया है। उपर्युक्त शोध प्रबन्ध में प्रकाशित स्वामी जी के लेखों तथा सम्पादकीयों ने कथ्य एवं शैली का तर्कसम्मत विश्लेषण कर शोधकर्ता ने जो निष्कर्ष निकाले हैं ये निश्चय ही महत्त्वपूर्ण तथा इतिहास के सशक्त हस्ताक्षर हैं। स्वामी जी के लिए पत्रकारिता एक मिशन था जिसे उन्होंने अपनी बहुआयामी प्रवृत्तियों में एक माना तथा दृढ़ निष्ठा तथा संकल्पपूर्वक निभाया। आशा है यह ग्रंथ हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास के अनेक अनदेखे पहलुओं से पाठकों का परिचय करायेगा।

स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा प्रकाशित व सम्पादित पत्र-पत्रिकाएँ-

1. सद्धर्म प्रचारक (उर्दू) जालन्धर
2. सद्धर्म प्रचारक (हिंदी) जालन्धर व गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार
3. श्रद्धा (हिन्दी) गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार
4. सत्यवादी (हिन्दी) गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार
5. दि गुरुकुल मैगजीन (अंग्रेजी) गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार
6. वैदिक मैगजीन एण्ड गुरुकुल समाचार (अंग्रेजी) गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार
7. वीर अर्जुन (हिन्दी) दिल्ली
8. उपदेश मंजरी (उर्दू)

जब जीरो दिया मेरे भारत ने......

[यह बहस पुरानी है पर हर बार तब ताजी हो जाती है, जब साइंस या गणित में कोई नई खोज होती है। गणित के नोबेल कहे जाने वाले फील्ड्स मेडल से नवाजे गए मंजुल भार्गव ने इस बहस में संस्कृत ग्रंथों और भारतीय संगीत की साइंटिफिक अप्रोच को जोड़कर इसे एक नया आयाम दे दिया है। क्या प्राचीन भारतीय विज्ञान और गणित इतने एडवांस थे कि मॉडर्न रिसर्च बस उन्हें आगे बढ़ा रही है? पता लगाने की कोशिश कर रहे हैं-*अमित मिश्रा]*

गणित के विकास की जड़ें भारत में 300 ईसा पूर्व में ही मिलनी शुरू हो जाती हैं। वे बड़े नाम, जिन्हें हजारों साल बाद भी गणित और विज्ञान की दुनिया के लोग भुला नहीं पा रहे है, वे है:-

पिंगल (300-200ई पू.)

क्षेत्र-गणित, संस्कृत व्याकरण

ग्रंथ-छन्दशास्त्र

योगदान-बाइनरी नंबर सिस्टम

मॉडर्न कनेक्शन-उनके 'मेरुप्रस्त्र' को पास्कल त्रिभुज (1663) से जोड़कर देखा जाता है। उनके 'मात्रमेरु' की छाया फिबनोची नंबरों (सन् 1202) में देखी जाती है।

आर्यभट्ट (476-550 ई.)

क्षेत्र-गणित, एस्ट्रॉनमी

ग्रंथ-आर्यभट्टीय, आर्यसिद्धांत

योगदान-पाई की वैल्यू, त्रिकोणमिति (ट्रिग्नोमेट्री), नंबर सीरीज

मॉडर्न कनेक्शन-पाई इरैशनल है, इसे यूरोप में 1761 में लैंब्रट ने साबित किया। आर्यभट्ट ने अपने पदों में पाई को 'असन्ना' मतलब लगातार बढ़ती हुई यानी अनंत (जिसकी

वैल्यू पूरी तरह जानी न जा सके) कहा है।

वराहमिहिर (505-587 ई.)

क्षेत्र-गणित, एस्ट्रॉनमी, एस्ट्रोलॉजी

ग्रंथ-पंचसिद्धांतिका, बृहतसंहिता, ब ृहतजातक

योगदान-ट्रिग्नोमेट्री के फॉर्म्युले, नेगेटिव नंबर और जीरो की एलजेब्रिक वैल्यूज, बाइनोमियल कॉफिशिएंट का कैलकुलेशन

मॉडर्न कनेक्शन-ट्रिग्नोमेट्री में साइन टेबलों को सटीक बनाने के बाद इसका अब भी इस्तेमाल होता है, पास्कल त्रिभुज के बाइनोमियल नंबरों में एक नया आयाम जोड़ा।

ब्रह्मगुप्त (598-70 ई.)

क्षेत्र-गणित, एस्ट्रोनमी

ग्रंथ-ब्रह्मस्फुटसिद्धांत खंडखाद्यका

योगदान-जीरो के जनक और इसे जोड़ने-घटाने, गुणा-भाग करने के नियमों को गढ़ा, जनरल लीनियर इक्वेशन का हल दिया।

मॉडर्न कनेक्शन-17वीं सदी से पेल्स इक्वेशन के नाम से प्रसिद्ध इक्वेशन ब्रह्मगुप्त के एक ग्रंथ का ही फॉर्म्युला था।

जीरों से हीरो तक

भारतीय इतिहास और दुनिया भर का इतिहास इस लिहाज से एक-दूसरे का रास्ता कटता आया है कि आखिर इंसानी जिंदगी को सरल करने वाली महान खोजें किसके हिस्से में आती हैं। भारतीय इतिहास हमेशा इस बात पर जोर देता आया है कि दुनिया भले ही एडवांस रिसर्च के रॉकेट पर सवार हो लेकिन इसका ईंधन भारतीय धर्मग्रंथों से ही आया है। हालांकि दुनिया ने जीरो समेत कई खोजों को भारतीय खाते में ही रखा है लेकिन फिर भी कई दावों को खारिज भी किया है। मशहूर साइंटिस्ट प्रोफेसर यशपाल का कहना है कि यकीनन 2000 साल पहले के कई रिसर्च चौंकाने

वाले तथ्य पेश करते हैं लेकिन फिर भी कहीं कुछ मिसिंग है। हम यह तो कह ही सकते हैं कि हमारी सभ्यता में बड़ी सोच पर जोर दिया जाता रहा है। लेकिन इनके साइंटिफिक प्रमाण मिलना अब भी मुश्किल है। वह इस बात पर जोर देते हैं कि इस बात को भी समझना जरूरी है कि मॉडर्न साइंस और मैथमैटिक्स आज जिस रूप में दिख रहा है, वह हजारों बरसों से दुनिया भर में हुई रिसर्च का नतीजा है। सारी बड़ी खोजें भारत की ही हैं, इस नतीजे पर पहुँचना जल्दबाजी हो सकती है।

चलता है इंडिया का सिक्का

भारत में सुपर 30 नाम से कोचिंग चलाने वाले आनंद कुमार का कहना है कि जब भी वह दुनिया भर की साइंटिफिक कॉन्फ्रेंस में जाते हैं तो प्राचीन भारतीय विज्ञान और गणित को सराहने वाले साइंटिस्ट हर बार मिलते हैं। उन्होंने तो यहाँ तक कहा कि अमेरिकन साइंटिफिक सोसायटी और अरेबियन साइंटिफिक सोसायटी गणित के क्षेत्र में भारतीय योगदान को हमेशा सराहती हैं और भारतीय संस्कृति के इस पहलू की काफी कद्र करती है। आनंद कुमार इस बात से भी हैरान है कि जहाँ अमेरिकन साइंटिफिक सोसायटी रामानुजम जैसे मैथमैटिशियन की तस्वीर को अपने सेंटर में जगह देती है, वहीं भारत में इनके योगदान की चर्चा करने का वक्त किसी के पास नहीं है। भारतीय गणित और विज्ञान के योगदान को ज्यादा-से-ज्यादा लोगों तक पहुँचा कर ही इन विषयों में छात्रों की रुचि जगायी जा सकती है। भारत में रिसर्च की धुँधली तस्वीर को उभारने में भी यही टोटका काम आ सकता है।

खुद को भूले हम

एनसीईआरटी के पूर्व डायरेक्टर, प्रोफेसर जे. एस. राजपूत

का मानना है कि भारत के पुराने ग्रंथो में कई ऐसी जानकारियाँ हैं, जिनका वैज्ञानिक तरीकों से अध्ययन भारत के लिए काफी फायदेमंद साबित हो सकता है। ज्यादातर पुराने ग्रंथ चूंकि संस्कृत में हैं इसलिए उन्हें पढ़ने के लिए इस भाषा को सीखना पड़ेगा, जो अभी संभव नहीं हो पा रहा। वह गणित और विज्ञान के भारतीय ग्रंथों को व्यवस्थित करने को सबसे बड़ी चुनौती मानते हैं और इनके व्यवस्थित हो जाने को अगली पीढ़ी के लिए सौगात की तरह देखते हैं। राजपूत का मानना है कि संस्कृत और वैदिक गणित की पढ़ाई को धार्मिक चश्मे से नहीं देखना चाहिए और इससे जुड़े धार्मिक पक्ष के अलावा अन्य कई पक्षों को सामने लाना भी जरूरी है। दुनिया भर के ज्ञान पर यूरोप और अमेरिका के एकाधिकार की बात करते हुए प्रोफेसर राजपूत बताते हैं कि जब 2000 में नामी टाइम मैगजीन ने दुनिया भर के 100 आविष्कारों की सूची बनाई तो उनमें केवल 2 नॉन व्हाइट थे। वेस्टर्न वर्ल्ड यही मानता है कि सारी खोजें उनकी सौगात हैं और उनसे पहले की सभ्यताएँ विज्ञान से कोसों दूर थीं। दुनिया हमें तभी मानेगी, जब हम खुद को जानना और मानना शुरू करेंगे।

इनका लोहा सबने माना

प्राचीन भारतीय विज्ञान और गणित की कुछ ऐसी खोजें हैं, जिन्हें लेकर दुनिया भर में न कोई विवाद है और न ही किसी को यह कहने में गुरेज है कि ये भारतीयों की देन हैं।

जीरो सब पर भारी

दुनिया भर में सभ्यताओं के विकास के साथ ही गिनने-घटाने के तरीकों का विकास हुआ। बस दिक्कत यह थी कि संख्या 9 के बाद दहाई, सैकड़ा आदि के लिए अलग से

चिह्न बनाए गए थे। भारतीय गणितज्ञ भास्कर प्रथम ने 600 ईसवी में एक छोटे से गोले को नंबर सिस्टम में जोड़ा और देखते ही देखते संख्याओं ने नई शक्ल लेनी शुरू की और अपने आज के स्वरूप में पहुँच गईं।

पाई ने किया पाई-पाई का हिसाब

इस चमत्कारी खोज के लिए तो आज भी दुनिया भर के वैज्ञानिक दाँतों तले उंगलियाँ दबाते हैं। पाई वह नियत (कंस्टेंट) वैल्यू है, जो किसी सर्कल की सर्कम्फ्रेंस (परिधि, सर्कल की शुरुआत से अंत की दूरी) और उसके डायमीटर का अनुपात है। इसके लिए एक खास संकेत इस्तेमाल होता है। आर्यभट्ट ने इसकी सटीक वैल्यू निकालने के लिए 500वीं सदी में अपने ग्रंथ आर्यभट्टम के गणितपद के दसवें श्लोक में लिखा-

चतुर्दिकम् शतमष्टगुणम् द्वासास्तिस्थात सहस्रनाम।
आयुतद्वयाविस्काभस्यासनौ वृपरिन्हा।।

इसका मतलब है - 100 में चार जोड़ें, 8 से गुणा करें और फिर 62000 जोड़ें। इस नियम से 20,000 परिधि (सर्कम्फ्रेंस) के एक वृत्त (सर्कल) का व्यास (डायमीटर) पता किया जा सकता है।

मतलब $((4+100) \times 8 \div 62000)/20000 = 3.1416$

अब भी दुनिया भर में पाई की यही वैल्यू मान्य है और यह दशमलव के 5 अंकों तक परफेक्ट है।

A Mauratius Yoga tour from 1-7th October, 2015 is being organized under the auspices of Acharya Chandershekar Shastri at total cost of Rs. 66,000/- per person.
Those desirous may kindly contact:-
Tel.: 09810084806

योग से असाध्य रोगों को मात देने की कोशिश

-किशोर कुमार

बिहार योग विद्यालय ने इस साल अपनी स्थापना के पचास वर्ष पूरे किए हैं। इस मौके पर यह दिल्ली के त्यागराज स्टेडियम में 18 से 21 सितंबर तक योग को लेकर एक विशेष समारोह करने जा रहा है, जिसे नाम दिया गया है- 'स्वयं को जानो योगोत्सव भारत यात्रा 2014'। दरअसल विद्यालय ने योग के संबंध में जन चेतना फैलाने के उद्देश्य से भारत यात्रा शुरू की थी, जिसका आरंभ मुंबई से हुआ। वह काठमांडो और कोलकाता से होते हुए दिल्ली पहुँचने वाली है। इसके समापन पर यह विशेष उत्सव हो रहा है, जिसमें वैज्ञानिक, मनौवैज्ञानिक, योग चिकित्सक, शोधकर्ता और संन्यासी हिस्सा लेंगे।

बिहार के मुंगेर शहर में गंगा के किनारे स्थित इस विद्यालय की स्थापना सन् 1964 में स्वामी सत्यानन्द सरस्वती ने अपने गुरु स्वामी शिवानन्द की इच्छा के अनुसार विश्व को योग का ज्ञान कराने के उद्देश्य से की थी। जिस जगह पर यह बना है, वह स्थान कर्णचौरा के नाम से प्रसिद्ध रहा है। कहा जाता है कि कर्ण प्रतिदिन सवा मन सोना यहीं पर दान दिया करते थे। बंगाल के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग ने अपनी पत्नी के स्वास्थ्य लाभ के लिए यहीं पर हवा महल का निर्माण करवाया था। बाद में मिदनापुर के जमींदार ने इस महल को खरीद लिया। ·

वर्षों बाद जब स्वामी सत्यानन्द सरस्वती कर्णचौरा पहुँचे, तो वह जगह वीरान हो चुकी थी। उन्होंने यहाँ योग विद्यालय बनाने का फैसला किया। लेकिन इसका जबर्दस्त विरोध हुआ क्योंकि खंडहर में तब्दील हो चुका हवा महल असामाजिक तत्वों का अड्डा बन गया था। पर स्वामी जी पर इसका कोई असर नहीं हुआ। उन्होंने इसका निर्माण शुरू करवा दिया। मामला कोर्ट कचहरी तक गया पर सभी विरोधियों को मुँह की खानी पड़ी।

योगोत्सव के संयोजक स्वामी शिवराजानंद सरस्वती कहते हैं कि योग साधना के बारे में लोगों ने सुना तो है पर कम ही लोगों ने इसका अनुभव पाया है। अनुभव कहता है कि आत्म-विश्वास का मार्ग बाहरी जगत में नहीं है। वह हमारे भीतर ही है। इसलिए इस योगोत्सव में योग साधना के प्राचीन, परंपरागत ज्ञान का आधुनिक विज्ञान के दृष्टिकोण से विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही लोगों को योग साधना के व्यावहारिक पक्ष के बारे में बताया जाएगा, ताकि वे इस ज्ञान का अधिक से अधिक लाभ उठाकर आधुनिक जीवन के नकारात्मक प्रभाव को हटा सकें।

आज 'योग निद्रा' को लेकर विद्यालय देश और विदेश में कई तरह के प्रयोग कर रहा है। स्वामी सत्यानंद सरस्वती ने तंत्र शास्त्र में वर्णित न्यास पद्धति के गूढ़ ज्ञान को वैज्ञानिक ढंग से विकसित करके इसे प्रस्तुत किया है। आज इससे कई रोगों को नियंत्रण में रखने में सफलता मिल रही है जिसमें कैंसर भी शामिल है। अमेरिका के स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ मेडिसिन में किए गए एक अध्ययन में देखा गया है कि योग निद्रा के नियमित अभ्यास से ब्लड प्रेशर की समस्या दूर होती है।

टैक्सास के रेडियोथेरेपिस्ट डॉ. ओसी सीमोनटन ने एक प्रयोग में पाया कि रेडियोथेरेपी से गुजर रहे कैंसर के रोगी को योग निद्रा का अभ्यास कराने से उसका जीवन-काल काफी बढ़ गया था।

फ्लोरिडा विश्वविद्यालय में मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन के दौरान बीस छात्रों को पाँच दिनों में योग निद्रा के जरिए रूसी भाषा सिखा दी। सभी विद्यार्थियों को निद्रा की अवस्था (योग की स्थिति) में रूसी संज्ञाओं को उनके अंग्रेजी समानार्थी शब्दों के साथ सुनाया गया। मशीनों के जरिए पता चला कि शुरू की तीन रातों में स्मरण शक्ति 10 फीसदी की दर से बढ़ रही थी जो अंतिम दो रातों में बढ़कर 13 फीसदी हो गई। यानी योग निद्रा से सीखने की प्रक्रिया समय के साथ और तेज हो रही थी। विद्यालय ने योग को लेकर लोगों के मन में बैठे कई भ्रम दूर किए हैं।

यदि जर्मनी ईसाई राष्ट्र है, तो क्यों भारत हिन्दू राष्ट्र नहीं है?

(अपनी स्वयं की जड़ की अस्वीकृति)

-मारिया विर्थ

यह वह विचार है, जिसके महत्त्व को जाँचा जाना है, यद्यपि मैं यह कहने में जल्दी करती हूँ कि यह कोई नहीं कहता है कि भारत को स्वयं को धर्मशासित राज्य घोषित करना चाहिए। धर्म व्यक्तिगत रुचि का मामला है और ऐसा रहना चाहिए। केवल हमें धर्मनिरपेक्षता की रक्षा और राजनीतिक रूप से सही होने के उद्देश्य से धर्मनिरपेक्षता के अनुसरण में अपने विश्वासों, संस्कृति और परम्पराओं को अवमानित नहीं करना चाहिए।

यद्यपि मैं भारत में लम्बे समय से रही हूँ, मैं अब भी कुछ बातों को नहीं समझ पा रही हूँ- उदाहरण के लिए क्यों अनेक शिक्षित भारतीय उत्तेजित हो जाते हैं, जब भारत को हिन्दू देश माना जाता है। बहुसंख्यक भारतीय हिन्दू हैं। भारत अपनी प्राचीन हिन्दू परम्परा के लिए विशेष है। इसी के कारण पश्चिम के लोग भारत की ओर आकर्षित होते हैं। तब अपने देश के हिन्दू मूल को स्वीकार करने का अनेक भारतीयों द्वारा प्रतिरोध क्यों किया जाता है?

यह प्रवृत्ति दो कारणों से विचित्र है। पहला, उन शिक्षित भारतीयों को केवल 'हिन्दू' भारत से समस्या है, लेकिन 'मुस्लिम' या 'ईसाई' देशों से नहीं। उदाहरण के लिए जर्मनी में केवल 51 प्रतिशत आबादी दो बड़े ईसाई चर्चों (प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक) के साथ पंजीकृत है, तथापि देश 'ईसाई देशों' के समूह में है। चांसलर अंजेला मारकेल ने हाल ही में जर्मनी की ईसाइयत की जड़ों पर जोर दिया है और लोगों से 'ईसाई मूल्यों की ओर वापस जाने' का अनुरोध किया है। 2012 में उन्होंने जर्मन कैथोलिक दिवस को सम्बोधित करने के लिए जी-8 सम्मेलन की अपनी यात्रा को स्थगित कर दिया। अंजेला मारकेल के सत्तारूढ़ दल सहित दो प्रमुख राजनीतिक दलों ने अपने नाम में ईसाई शब्द जोड़ दिए हैं।

जर्मन क्रोधित नहीं होते हैं, यदि जर्मनी को ईसाई देश कहा जाता है, और मैं वस्तुतः समझती हूँ कि वे हैं। यद्यपि चर्च का इतिहास भयावह है। ईसाइयत की तथाकथित सफलता की कहानी पर्याप्त रूप से निरंकुशता पर आधारित है। "धर्म परिवर्तन करो या मरो" वह विकल्प था, जो पाँच सौ वर्ष पहले अमेरिका में स्वदेशी आबादी को दिया गया था। जर्मनी में भी 1200 वर्ष पहले सम्राट् कार्ल महान् ने अपने नव विजित क्षेत्र में बपतिस्मा से मनाही के लिए मृत्यु दण्ड देने का आदेश दिया था। इसने उनके सलाहकार अल्कुईन को यह टिप्पणी करने के लिए उत्तेजित किया: 'कोई उन्हें बपतिस्मा के लिए बाध्य कर सकता है, लेकिन उन्हें विश्वास करने के लिए कैसे बाध्य किया जाए?'

वे दिन, जब किसी की जिंदगी खतरे में पड़ सकती थी, यदि कोई चर्च के धर्म सिद्धान्त से सहमत नहीं होता था, अब समाप्त हो गए हैं। अब पश्चिम में अनेक चर्च से सहमत नहीं होते हैं और उसे शान्ति से छोड़ देते हैं–कुछ तो इसलिए क्योंकि वे चर्च के अधिकारियों के कम धार्मिक व्यवहार से विरक्त हो जाते हैं और बाकी इसलिए क्योंकि वे धर्म सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते। उदाहरण के लिए : 'ईसा एक मात्र मार्ग है' और 'ईश्वर केवल उन सबको नरक भेजते हैं, जो इन्हें नहीं स्वीकार करते'।

और दूसरा कारण यह है कि भारतीयों के हिन्दुत्व के साथ प्रतिरोध को समझना कठिन है। हिन्दुत्व अब्राहमी धर्म से भिन्न श्रेणी में हैं। ईसाइयत और इस्लाम की तुलना में इसका इतिहास निःसन्देह कम उग्र था, क्योंकि यह प्राचीन समय से विश्वासोत्पादक तर्कों द्वारा फैला न कि बल से। यह ऐसी विश्वास प्रणाली नहीं है, जो धर्म सिद्धान्त में अंधविश्वास और किसी की बुद्धिमत्ता के रोक की माँग करता है। इसके विपरीत हिन्दुत्व अपनी बुद्धिमत्ता के उपयोग को प्रोत्साहित करता है। यह परिष्कृत चरित्र और बुद्धि पर आधारित सच्चाई की खोज है। इसमें न केवल धर्म और दर्शन से संबंधित वरन् संगीत, वास्तुकला, नृत्य, विज्ञान, खगोल विज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति

आदि से संबंधित प्राचीन साहित्य का बड़ा भण्डार है।
यदि जर्मनी या किसी अन्य पश्चिमी देश के पास इस तरह का साहित्यिक खजाना होता, तो यह अत्यधिक गौरवशाली होता और अपनी महत्ता को हर अवसर पर उजागर करता। जब मैंने उदाहरण के लिए उपनिषद् को देखा, मैं भौचक्की रह गयी। यहाँ स्पष्ट भाषा में व्यक्त था जिसे मैंने सहज रूप से सही होने का अनुभव किया। लेकिन इसे साफ-साफ स्पष्ट नहीं कर सकी। ब्रह्म आंशिक नहीं है, यह हर कुछ में अदृश्य है, अविभाज्य भाव है। हर कोई अंतिम सत्य का पता लगाने का बार-बार अवसर प्राप्त करता है और इसका अनुसरण करते हुए अपना रास्ता चुनने के लिए स्वतन्त्र है। सहायक संकेत दिए गए हैं, लेकिन थोपे नहीं गए हैं।

भारत के अपने प्रारंभिक दिनों में मैं सोचती थी कि हर भारतीय अपनी परम्परा को जानता है और इसको महत्त्व देता है-धीरे-धीरे मैंने महसूस किया कि मैं गलत थी। ब्रिटिश कॉलोनी काल के मालिक अपनी प्राचीन परम्परा से अनेक सम्भ्रान्त व्यक्तियों को अलग करने में ही नहीं वरन् उनके द्वारा इसकी अवज्ञा करवाने में सफल रहे। ऐसा हुआ कि 'शिक्षित' वर्ग ने मूल संस्कृत पाठों को नहीं पढ़ा और ब्रिटिश विद्वानों ने उन्हें जो कहा, उस पर विश्वास कर लिया। ज्ञान की यह कमी और ब्रिटिश शिक्षा द्वारा बलात् मत परिवर्तन वह कारण हो सकता है क्योंकि अनेक 'आधुनिक' भारतीय 'हिन्दू' के खिलाफ हैं। वे पश्चिमी धर्मों, जिन पर आँख मूँदकर विश्वास किया जाना है (या इसे कम से कम घोषित किया गया) और जो यदि अपने अनुयायी को स्वयं ही सोचने से मनाही नहीं तो हतोत्साहित करता है और बहुस्तरीय हिन्दू धर्म स्वतन्त्रता देता है और अपनी बुद्धि के इस्तेमाल के लिए प्रोत्साहित करता है।

अनेक शिक्षित वर्ग के लोग यह अनुभव नहीं करते हैं कि एक ओर पश्चिमी लोगों ने विशेषकर वे जो इस विशाल देश में अपना धर्म लागू करने का सपना देखते थे, हिन्दू धर्म की अवमानना करने के लिए उसकी प्रशंसा की, क्योंकि इसने पश्चिमी विश्ववाद को भारत में फैलाने में सहायता की। दूसरी

ओर चर्च के लोगों के सहित अनेक पश्चिमी लोग, अच्छी तरह इसे समझते थे और उन्होंने चोरी-छिपे विशाल भारतीय ज्ञान प्रणाली से उपयुक्त अन्तर्ज्ञान को ले लिया, मूल स्रोत को पीछे छोड़ दिया और इसे इस तरह प्रस्तुत किया मानों यह अन्तर्ज्ञान पश्चिम को पहले से ज्ञात था।

इन्फिनिटी फाउंडेशन के राजीव मल्होत्रा ने इस क्षेत्र में कठिन अनुसन्धान किया है और पश्चिमी विश्ववाद में धर्म सभ्यता के "पीजाने" के अनेक मामलों को प्रलेखित किया है। उसने शब्द आत्मसात्करण को चुना, क्योंकि इसका अर्थ है कि जिसे खाया गया (उदाहरण के लिए एक हिरण) अन्त में नहीं रहता, जबकि खाने वाला (एक बाघ) मजबूत हो जाता है। इसी तरह हिन्दू सभ्यता धीरे धीरे अपनी मूल्यवान, एकमात्र परिसम्पत्ति को खो रही है और जो बच जाता है, घटिया कहा जाता है। यदि केवल मिशनरी हिन्दू धर्म को अवमानित्र करते तो वह इतना बुरा नहीं होता, क्योंकि उनके पास स्पष्ट एजेंडा था, जिसे विवेकी भारतीयों को भाँप लेना चाहिए था। लेकिन दुःख की बात है कि हिन्दू नाम के साथ भारतीयों ने उनकी सहायता की, क्योंकि उन्होंने गलती से विश्वास किया कि हिन्दुत्व पश्चिमी धर्मों से घटिया है। वे पूरी जानकारी प्राप्त करने के बजाय हर हिन्दू को तुच्छ समझने लगे। नियमतः वे अपनी परम्परा के बारे में कुछ नहीं जानते थे, इसके अलावा कि ब्रिटिशों ने उन्हें जो कहा अर्थात् यह कि हिन्दू जाति की प्रमुख विशेषता जाति प्रथा और मूर्ति पूजा है। वे यह अनुभव नहीं कर सके कि इससे भारत लाभान्वित होगा न कि इसे घाटा होगा, यदि यह गहन और सबसे अलग हिन्दू परम्परा का अनुसरण करेगा। कुछ समय पूर्व परम पावन दलाई लामा ने कहा कि ल्हासा में एक युवा के रूप में वह भारतीय विचारधारा की सम्पन्नता से अत्यधिक प्रभावित थे, भारत के पास दुनिया को मदद करने की बहुत क्षमता है। पश्चिमीकृत भारतीय सम्भ्रान्त व्यक्ति इसे कब अनुभव करेंगे?

हिन्दू विश्व पत्रिका से साभार

देश की रक्षा हेतु हम संगठित हों

-प्रो. बलराज मधोक

(संपा. यह लेख 2005 में लिखा गया था। इसके बाद से समाज में अनेक परिवर्तन हुए और भारतीय जनता पार्टी पुनः सत्ता में आई। आशा है ये वर्तमान काल में हिन्दुत्व की शक्तियों को संगठित करके देश को नई दिशा देगी।)

खण्डित रूप में स्वतंत्र होने के 68 वर्षों के बाद हिन्दुस्तान फिर चौराहे पर खड़ा है। मुस्लिम समस्या, जिसके हल के लिये मातृभूमि के विभाजन की भयानक कीमत हमने 1947 में चुकाई थी, उससे भी अधिक खतरनाक रूप में फिर खड़ी हो गई है। पाकिस्तान के लिये काम करने और वोट देने के बाद हिन्दुस्तान में रह गये मुसलमानों का हम न भारतीयकरण कर पाये और न उन्हें राष्ट्रधारा में ला सके। फलस्वरूप उनकी खण्डित हिन्दुस्तान को ही पाकिस्तान की तरह इस्लामी देश बनाने की मनोकामना और तीव्र हो गई। अब उनकी पीठ पर पाकिस्तान और बांग्लादेश भी हैं और उनके वोटों के भूखे तथाकथित सैकुलर राजनेता और उनके दल भी हैं। मिल्लत और कुफ्र, दार-उल-इस्लाम, दार-उल-हरब और जिहाद के सिद्धान्त अब उनके बच्चों में मरदसों द्वारा अंकित किये जा रहे हैं। इस्लामी आतंकवाद विश्वव्यापी खतरा और संकट बन गया है। हिन्दुस्तान और हिन्दू इस आतंकवाद से सदियों से जूझते रहे हैं। परन्तु "मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की" की तरह यह संकट बढ़ता ही जा रहा है। फलस्वरूप न केवल हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता और एकता अपितु इसका अस्तित्व और हिन्दू पहचान भी खत्म होती दिखती है। यह एक राष्ट्रव्यापी संकट है और सारे राष्ट्रवादियों और देशभक्तों को मिलकर इसका मुकाबला करंना होगा।

नेहरू और उनकी गलत नीतियाँ, जिनका आज की स्थिति परिणाम है, उत्पन्न होने वाले खतरों को भाँप कर डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने अप्रैल 1950 में नेहरु मंत्रिमंडल, जिसमें वे उद्योग मंत्री थे, से त्यागपत्र देकर और कुर्सी को लात मारकर राष्ट्रवादियों और हिन्दुत्ववादियों को एक राजनैतिक मंच पर लाने का संकल्प किया जो 1951 में भारतीय जनसंघ के निर्माण के रूप में फलीभूत हुआ।

डॉ. मुखर्जी प्रखर हिन्दुत्ववादी और राष्ट्रवादी थे। हिन्दुस्तान हिन्दू राष्ट्र है- यह उनकी मान्यता थी और आजीवन उन्होंने

इसे मूर्त रूप देने का संकल्प किया। 1952 में लोकसभा में जनसंघ के प्रतिनिधि चुनकर आने के बाद उन्होंने सभी राष्ट्रवादी सांसदों को एकसूत्र में बाँधा था और लोकसभा में पहले गैर-सरकारी विरोधी पक्ष के नेता के रूप में मान्यता पाई थी। कुछ समय के बाद प्रजा समाजवादी पार्टी ने भी जिसके 22 सदस्य थे, डॉ. मुखर्जी के नेतृत्व वाले संसदीय दल में शामिल होने की इच्छा व्यक्त की। प्रजा समाजवादी पार्टी के नेता श्री अशोक मेहता ने डॉ. मुखर्जी से मिलकर यह पेशकश की ताकि डॉ. मुखर्जी सरकारी तौर पर विरोधी पक्ष के नेता बन जायें और उन्हें संविधान के अनुसार कैबिनेट मंत्री का दर्जा और अन्य सुविधाएँ मिल जायें, परन्तु श्री अशोक मेहता की शर्त थी कि इनके इस संसदीय दल में से हिन्दू महासभा को जिसके लोकसभा में केवल चार सदस्य थे, निकाल दिया जाये। कारण स्पष्ट था हिन्दू महासभा खुले रूप में हिन्दू राष्ट्र के लिए प्रतिबद्ध थी। डॉ. मुखर्जी ने श्री अशोक मेहता का यह सुझाव यह कहकर रद्द कर दिया कि वे भी हिन्दू राष्ट्रवादी हैं और कैबिनेट मंत्री का दर्जा पाने के लिये वे अपनी विचारधारा से समझौता नहीं कर सकते।

डॉ. मुखर्जी के कुशल नेतृत्व और संघ के स्वयंसेवकों के व्यापक समर्थन के कारण जनसंघ शीघ्र ही एक प्रबल राजनैतिक शक्ति बन गया और डॉ. मुखर्जी को हिन्दुस्तान का अगला प्रधानमंत्री माना जाने लगा। इससे नेहरु और उनके खेमों में खलबली मच गई और यही 23 जून 1953 को श्रीनगर में बंदी के रूप में उनकी मेडिकल हत्या का कारण बना। जनसंघ कुछ काल के लिये मानों अनाथ हो गया परन्तु शीघ्र ही वह अपने पाँव पर खड़ा हो गया। सभी दल इसके साथ तालमेल करना चाहते थे औंर 1967 का आम चुनाव इसने स्वतंत्र पार्टी, अकाली दल, हिन्दू महासभा तथा अन्य कुछ दलों के साथ मिलकर लड़ा और इस गठजोड़ को लोकसभा में 100 सीटें मिलीं। मेरा विश्वास था कि जनसंघ अगले चुनावों में सत्ता में आ सकेगा, परन्तु नियति को कुछ और मंजूर था। श्री दीनदयाल उपाध्याय, मेरे बाद जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष बने। अध्यक्षता संभालने के छः सप्ताह के अन्दर ही उनकी हत्या कर दी गई, जिस पर आज भी रहस्य का परदा पड़ा हुआ है। उसके बाद जो लोग जनसंघ में आगे आये उन्होंने जनसंघ को राष्ट्रवाद और हिन्दुत्व के मार्ग से हटाकर नेहरूवाद

और मुस्लिम तुष्टीकरण के रास्ते पर ले जाना शुरू किया। उन्होंने भारतीयकरण के आन्दोलन को जिसे अखिल भारतीय जनसंघ की प्रतिनिधि सभा में डॉ. मुखर्जी द्वारा सर्वसम्मति से पारित किया था, से हाथ खींच लिया। फलस्वरूप जनसंघ की हिन्दुत्ववादी छवि धूमिल होने लगी। परन्तु जन साधारण ही नहीं अपितु विश्व के राजनेता भी जनसंघ को हिन्दू पार्टी मानते रहे, इसे कोई भी साम्प्रदायिक पार्टी नहीं कहता था। 1975 में इमरजेंसी लगने के बाद जब जनसंघ सहित सभी गैर कम्युनिस्ट विरोधी दलों के नेताओं को बन्दी बना लिया गया तब आपातकाल और इन्दिरा गाँधी से छुटकारा पाने के लिए श्री जयप्रकाश, नारायण की पहल पर विरोधी दलों को 'इन्दिरा हटाओ' के नकारात्मक आधार पर एकसूत्र में बाँधने के प्रयास शुरू हुए। जनता पार्टी का उदय इसी का परिणाम था। 1977 के चुनाव में इन्दिरा गाँधी की हार और इन्दिरा के सत्ता से हट जाने के बाद यह आधार खत्म हो गया और जनता पार्टी के विघटन की प्रक्रिया शुरू हो गई। इसमें शामिल दलों ने इससे अलग होकर अपनी पुरानी पार्टियों को पुनर्जीवित कर लिया, परन्तु जनसंघ के नेहरूवादी नेताओं ने जनसंघ में लौटने की बजाय जनसंघ की राष्ट्रवादी हिन्दुत्ववादी विचारधारा को छोड़कर जनता पार्टी की गाँधीवादी समाजवाद की विचारधारा, को अपना प्रेरणास्रोत घोषित करके भारतीय जनता पार्टी के नाम से नई पार्टी बना ली। इसकी स्थापना 5-6 अप्रैल 1980 को मुम्बई में हुई। इसकी अध्यक्षता अटल बिहारी वाजपेयी ने की। अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री वाजपेयी ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि भारतीय जनता पार्टी असली जनता पार्टी है।

भारतीय जनसंघ को छोड़कर भारतीय जनता पार्टी का गठन सबसे बड़ी भूल थी। ऐसा करके इसने न केवल जनसंघ नाम और इसके भगवे झंडे से मुँह मोड़ लिया, अपितु इसकी हिन्दुत्ववादी, राष्ट्रवादी विचारधारा से भी नाता तोड़ लिया। फलस्वरूप संघ के कार्यकर्ताओं के लिए जो हिन्दुत्व की विचारधारा से प्रतिबद्ध थे, अपने आपको भारतीय जनता पार्टी के साथ जोड़ना कठिन हो गया। भाजपा के 6 वर्षों के शासनकाल ने उनका इससे पूर्णतः मोह भंग कर दिया। 2004 में भाजपा की हार और साधारण कार्यकर्ताओं की अटल बिहारी वाजपेयी से बढ़ती दूरी का यही मुख्य कारण है।

भारतीय जनता पार्टी का उसी प्रकार सुधार नहीं किया जा सकता, जिस प्रकार कांग्रेस का सुधार नहीं किया जा सकता। भाजपा के प्रेरणास्त्रोत गाँधी और जे. पी. हैं, जिनका चिन्तन हिन्दुत्व और प्रखर राष्ट्रवाद से कोसों दूर था। भाजपा अपने वर्तमान रूप में रहते हुए उन्हें तिलांजलि नहीं दे सकती। इसलिये विचारवान लोग यह सुझाव दे रहे हैं कि देश में एक हिन्दुत्ववादी और राष्ट्रवादी पार्टी को खड़ा किया जाये। इसके दो उपाय सुझाये गए- एक यह कि एक नई हिन्दू पार्टी बनाई जाये और दूसरे यह कि भारतीय जनसंघ को सक्रिय और सबल बनाया जाये।

नई पार्टी बनाने का सुझाव व्यावहारिक नहीं है। किसी पार्टी के नाम का प्रचार करने और उसकी छवि बनाने में समय लगता है, परन्तु भारतीय जनसंघ का नाम पहले से ही गाँव-गाँव और जन-जन तक फैला हुआ है। इसकी छवि आज भी पूर्ववत् उज्ज्वल है और इसकी विचारधारा की प्रासंगिकता आज पहले से अधिक है।

मेरी सभी राष्ट्रवादियों, विशेष रूप से उपर्युक्त सभी संस्थाओं के उन साथियों से जिन्होंने अपने जीवन का बहुमूल्य भाग हिन्दू समाज को एकसूत्र में जोड़ने के पुनीत कार्य में लगाया है, अपील है कि वे अपने-अपने स्थान पर अपनी प्रेरणा से जनसंघ को सक्रिय और सबल बनाने के कार्य में जुट जायें। जनसंघ एक वैचारिक आन्दोलन है। इसका विचार सशक्त, तर्कसंगत और समय की आवश्यकता के अनुकूल है। *(सपा. वर्तमान परिस्थितियों में यह कितना संगत है?)*

वैदिक वाक्य चरैवेति-चरैवति हमारा मूल वाक्य है और हिन्दू राष्ट्र हमारी आस्था और आराधना का केन्द्र है। हिन्दुस्तान के असंख्य महापुरुषों और आज के समय में महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, वीर सावरकर, डॉ. हेडगेवार, डॉ. मुखर्जी, श्री गुरुजी और डॉ. अम्बेडकर ने इस विचारधारा को आगे बढ़ाने के लिए जीवन पर्यन्त कार्य किये और इसके लिये जिये और इसके लिये मरे। आइये! हम उनका अनुसरण करें और मिलकर सिंहनाद करें। जनसंघ के साथ चलो, सबको लेकर साथ चलो।

जे 394, शंकर मार्ग, नई दिल्ली-60

The World According To Gita

-Henry Kissinger

Word order in Hindu cosmology was governed by immutable cycles of an almost inconceivably vast scale-millions of years long. Kingdoms would fall, and the universe would be destroyed, but it would be re-created, and new kingdoms would rise again. The true nature of human experience was known only those who endured and transcended these temporal upheavals.

The Hindu classic the Bhagavad Gita framed these spirited tests in terms of the relationship between morality and power. Arjuna, "overwhelmed by sorrow" on the eve of battle at the horrors he is about to unleash, wonders what can justify the terrible consequences of war: This is the wrong question, Krishna rejoins. Because life is eternal and cyclical and the essence of the universe is indestructible. Redemption will come through the fulfillment of a preassigned duty, paired with a recognition that its outward manifestations are illusory because "the impermanent has no reality; reality lies in the eternal." Arjuna, a warrior, has been presented with a war he did not seek. He should accept the circumstances with equanimity and fulfill his role with honour, and must strive to kill and prevail and "should not grieve."

While Lord Krishna's appeal to duty prevails and Arjuna professes himself freed from doubt, the cataclysms of the war-described in detail in the rest of the epic-add resonance to his earlier qualms. This central work of Hindu thought embodied both an exhortation to war and the importance not so much of avoiding but of transcending it. Morality was not rejected, considerations were dominant, while eternity provided a curative perspective. What some readers lauded as a call to fearlessness in battle, Gandhi would praise as his "spiritual dictionary". Against the background of the eternal verities of a religion preaching the elusiveness of any single earthly endeavor, the temporal ruler was in fact afforded a wide berth for practical

necessities. The pioneering exemplar of this school was the 4th century BC minister Kautiya, credited with engineering the rise of India's Mauryas Dynasty, which expelled Alexander the Great's successors from northern India and unified the sub-continent for the first time under single rule.

Kautilya wrote about an India comparable in structure to Europe before the Peace of Westphalia. He describes a collection of states potentially in permanent conflict with each other. Like Machiavelli's, his is an analysis of the world as he found it; it offers a practical, not a normative, guide to action. And its moral basis is identical with that of Richelieu, who lived nearly two thousand years later: the state is a fragile organization, and the statesman does not have moral right to risk its survival on ethical restraint.

The Arthashastra sets out, with dispassionate clarity, a vision of how to establish and guard a state while neutralizing, subverting and (when opportune conditions have been established) conquering its neighbors. The Arthashastra encompasses a world of practical statecraft, not philosophical disputation. For Kautilya, power was the dominant reality. It was multidimensional, and its factors were interdependent. All elements in a given situation were relevant, calculable, and amenable to manipulation toward a leader's strategic aims. Geography, finance, military strength, diplomacy, espionage, law, agriculture, cultural traditions, morale and popular opinion, rumors and legends, and men's vices and weaknesses needed to be shaped as a unit by a wise king to strengthen and expand his realm much as a modern orchestra conductor shapes the instruments in his charge into a coherent tune. It was a combination of Machieavelli and Clausewitz.

Millennia before European thinkers translated their facts on the ground into a theory of balance of power the Arthashastra set out an analogous, if more elaborate, system termed the "circle of states." Whatever professional of amity he might make, and

ruler whose power grew significantly would eventually find that it was n his interest to subvert his neighbour's realm. This as an inherent dynamic of self-preservation to which morality was irrelevant.

What our time has labelled covert intelligence operations were described n the Arthashastra as an important tool. Operating in "all states of the circle" (friends and adversaries alike) and drawn from the ranks of "holy ascetics, wandering monks, cart-drivers, wandering minstrels, jugglers, tramps, [and] fortune-tellers," these agents would spread rumors to foment discord within and between other states, subvert enemy armies, and "destroy" the King's opponents at opportune moments.

The Arthashastra advised that restrained and humanitarian conduct was under most circumstances strategically useful: a king who abused his subjects would forfeit their support and would be vulnerable to rebellion or invasion; a conqueror who needlessly violated a subdued people's customs or moral sensibilities risked catalyzing resistance.

The Arthashastra's exhaustive and matter-of-fact catalogue of the imperatives of success led the distinguished 20th-century political theorist Max Weber to conclude that the Arthashastra exemplified "truly radical 'Machiavellianism'...... compared to it, Machiavelli's The Prince is harmless". Unlike Machiavelli, Kautilya exhibits no nostalgia for the virtual of a better age.

Whether following the Arthashastra's prescriptions or not, India reached its high-water mark of territorial extent in the third century BC, when its revered Emperor Ashoka governed a territory comprising all of today's India, Bangladesh, Pakistan and part of Afganistan and Iran.

Penguin India

- Children require guidance and sympathy far more than instruction.
- Never confuse a single defeat with a final defeat.
- If the creator had a purpose in equipping us with a neck, he surely meant us to stick it out.

Date of Pubn. : 31.8.2015 Posted at - NIE - H.O. Postal Date : 2-3 Sep. 2015
RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062 Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2014-2016

भग एवं भगवाँऽअस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तःस्याम।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह।।
(यजु.24/38)

ऋषि–वसिष्ठ, देवता--भगवान्, छन्द–त्रिष्टुप्

भावार्थ–हे परमेश्वर! (देवाः) हे विद्वज्जनों (तेन) उस् आपकी की सहायता से हम (भगवन्तः) ऐश्वर्य युक्त हों। हे (भग) ईश्वर! सारा संसार (तं त्वा) उस आपको ग्रहण करने की अत्यन्त इच्छा करता है क्योंकि ऐसा भाग्यहीन मनुष्य कौन है जो आपको पाने की इच्छा न करे? अतः आप हमें प्राप्त हों। फिर कभी आप और ऐश्वर्य हमसे अलग न हो। आपकी कृपा से इसी जन्म में हम आपके ऐश्वर्य का भोग करें और नित्य आपकी सेवा में तत्पर रहें।

Oh God! You are the Master of all. By Your very nature You are the Supreme Power. Oh Lord! the learned people of the world can become possessors of supreme power. Oh Majestic God! whole of this world is desirous to realise You of this description. Oh God! may You as such be to us accessible even before we become aware of it in this world.

Printed by - Friendsprintofast, New Delhi-58